॥ ॐ ऐं नमः ॥

पूना में पंद्रह दिन बापू के साथ

(प्रा. प्रतापकुमार टोलिया)

प्रथम दर्शन : दुर्लभ अवसर

प्रसन्न-मस्त विद्याभ्यास की कुमारावस्था के वे दिन थे... पंद्रह वर्ष की देहायु, पूना की रविवार पेठ स्थित आर.सी.एम. गुजराती हाईस्कूल, चौथी कक्षा की उस विद्या-श्रेणी में अभ्यास में चित्रकला उपरान्त स्काउट-प्रवृत्ति में भी प्रविष्ट होकर विशेष योग्यताएँ प्रदान करने का अवसर मिल रहा था। एक ओर से ललितकला में चित्र, दूसरी ओर से निवास निकट गोपाल गायन समाज में संगीत और तीसरी ओर से विद्यालय के 'भरत पथक' स्काउट के द्वारा शरीर-सौष्ठव-निर्माण और सेवा-कार्य में योगदान। जैसी विद्यालयीन पढ़ाई में रुचि सह महारथ प्राप्त होती जा रही थी, वैसी ही इन विशिष्ट इतर प्रवृत्तियों में भी। तभी से एक समग्र, सर्वांगीण, संतुलित विकास की मानों सहज ही प्राप्ति होने लगी थी। माता-पिता एवं अग्रज — सभी इस में प्रोत्साहित कर रहे थे यह मेरा कितना सौभाग्य था ! उनका उपकार सदा महसूस/प्राप्त करता जाता था। पर्वती दादावाड़ी नित्य जिनदर्शनोपरान्त।

इतने में एक सु-अवसर पूना के सद्भाग्य में आया। १९४५ के अंतिम माह के दिन थे। १९४६ जनवरी आरम्भ तक।

बापू गांधीजी का, पूना स्टेशन निकटस्थ, डा. दिनशा महेता के निसर्गोपचार केन्द्र Nature Care पर अच्छे समय के लिए रुकना हुआ। उनके स्वास्थ्य के उपरान्त राष्ट्रीय प्रवृत्तियों के निमित्त थे।

बापू की सेवा में कुछ सुयोग्य कुमार स्वयंसेवकों की आवश्यकता थी। व्यवस्थापकों से डा. दिनशा मेहता द्वारा हमारे जाने-माने गुजराती विद्यालय पर इस हेतु निमंत्रण आया। विद्यालय के प्राचार्य गांधीवादी खद्दरधारी प्रसन्नवदन श्री दादावाले साहब एवं भरतपथक स्काउट के मुखिया श्री मोदी ने ठीक से कसौटी-परीक्षा कर इस हेतु हम दो छात्रों को चुना — एक को दिनभर के लिए — दूसरे को रात्रिभर के लिए। मैं और मेरा सहपाठी मित्र प्रताप दत्तानी इस चयन से फूले नहीं समाये। हम दोनों मित्रों का राष्ट्रवादी लगाव, बारबार आगाखान पेलेस पर कस्तुरबा-महादेवभाई की समाधियों पर जाना और मेरे वतन अमरेली में 1942 अगस्त के भारत छोडो आंदोलन में बाल-पराक्रम ये शायद हमारे चयन के मूल में थे। प्रथम तो दूसरे ही प्रातः दोनों निसर्गोपचार केन्द्र पर अपनी स्काउट की वेशभूषा में पहुंच गये। डा. दिनशा से हम प्रथम मिले। गुजराती स्कूल से और स्काउट वेशधारी गुजराती स्वयं सेवक आये जानकर वे बड़े खुश हुए। अपनी पारसी गुजराती में ही बड़े प्रेम से बोले —

"आवो डिकरा... ! चालो टमने बापूजी पासे ज लई जाउं... ।"

बापू अपनी स्वच्छ-श्वेत खदर की गद्दी की पाट पर अपनी लाक्षणिक मुद्रा में एक वस्त्रधारी बनकर बैठे बैठे कुछ लिख रहे थे ।

उनके उस कमरे में पहुंचकर डाक्टर साहब ओर हम दोनों बच्चे प्रथम तो उनके ईशारे से चुपचाप खड़े रह गये । तुरन्त ही बापूने लिखना रोककर हमारी और देखा और मुस्कुरा कर बोले :

"आओ दिनशा....."

दिनशाजी ने और हम दोनों ने बापू को प्रणाम किया और आनन्दविभोर हो उठे । एकदम ही दिनशाजी ने बापू से हमारा परिचय करवाया :

"बापूजी ! आपनी (णी) गुजराती स्कूलमांथी ज आ बे बच्चां स्वयंसेवक तरीके आपनी सेवा माटे आव्यां छे — बंने स्काउट वोलन्टियर छे....."

"भले आव्यां" कहकर बापू ने अपना स्मित दर्शाया । कहा और पूछा :

"स्काउट थई सेवा आपो छो ए सारी वात छे । तमारो पोशाक पण सरस छे । परंतु ए खादीनो नथी, खरुं ने ?"

"ना बापुजी, खादीनो नथी"

"स्काउट संस्थाए आपेलो छे ।" मुझे छोटी वय में पिताजी द्वारा सिलवा दिये गये वे हरे रंग के खद्दर के कोट-चड्डी याद आ गये ।

"तो हवे खादीनो सीवडावशो ?"

"जरुर बापुजी, जरुर सीवडावीशुं"

"बहु सुंदर । पण खादीनो शा माटे ए पण पहेलां आ डोक्टर साहेब पासेथी समजी लेजो..."

"भले" फिर बापू का चरण-स्पर्श कर हम विदा होने लगे ।

फिर बापूने डा. दिनशा को इस बात का संकेत कर हमें सायं-प्रार्थना समय हरिजन फंड एकत्र करने में जोड़ने का भी निर्देश दिया । फिर दिनशाजी हमें एक अन्य व्यवस्थापक व्यक्ति के पास ले गये । सब कुछ उन्हें बताया । उन्होंने हमें दिवस और रात के बारी बारी के कर्तव्य-कार्य बतलाये । हम उसीमें जुट गये । शाम को सायं-प्रार्थना के समय सभाजनों से हरिजन फंड में धन जुटाने के लिये पात्र सौंपे गये । लोगों से इस पुण्यकार्य हेतु पैसे एकत्र करने में हमें बड़ा आनन्द आया - दिनभर के अन्य सेवाकार्यों के उपरान्त ।

रात की सेवा-पारी के लिए उस दिन मेरे दूसरे मित्र को रुकना था । मैं सानन्द घर लौटा । सारे परिवारजनों को 'आनन्दीकुटी' पुरंदरे कोलोनी के हमारे निवास पर बापू के प्रथम परिचय का आनन्द ऐसा बाँटने लगा, मानों हमने जीवन का कोई बड़ा लाभ हॉसिल कर लिया हो । छोटा भाई कीर्ति तो बड़ा इतराता रहा ।

फिर जल्दी सोकर दूसरी सुबह मुँह अंधेरे ही जल्दी उठ गया और झटपट अपनी प्रात:क्रियाएँ निपटाकर, अपना गणवेश पहने अपनी साइकिल पर सवार हो गया, निसर्गोपचार केन्द्र पर बापू की सेवा में पहुँच गया । आज उनके कमरे के दरवाज़े पर ही खड़ा रहना था । बापू अपने पेट और कपाल पर मिट्टी की पट्टी लगाये लेटे हुए थे । वहाँ के व्यवस्थापक ने मुझे चुपचाप खड़े रह जाने का संकेत किया । बापू के उठने पर - उनको कुछ दूर से प्रणाम कर अपने सौंपे गये कार्य-आगंतुकों का स्वागत कर बीठाने या बापू के पास ले जाने का जिम्मा-कर्तव्य-में लग गया । बीच बीच में बापू के भिन्न भिन्न सावध-कार्यों को निहारने का एवं अनेक आनेजाने वालों से उनकी बातचीत सुनने का भी अवसर मिलता रहा । किस सेवार्थी को ऐसा दुर्लभ मौका मिलता होगा ?

हरिजन फंड धन पायो : 'बहु पुण्य' पद-पंक्ति सुनायो

फिर सायं प्रार्थना, हरिजन-फंड एकत्रीकरण और अपनी साइकिल उठाये घर लौटना । चला यह क्रम । दो दिन ऐसे सानन्द बीत गए ।

उस दिन सायं प्रार्थना के बाद एक छोटा-सा प्रेरक-प्रसंग बापू के साथ घट गया था । बापू, कुछ लोग, डो. दिनशा एवं व्यवस्थापक भाई के साथ प्रार्थना-स्थान से अपने कमरे की ओर लौट रहे थे और हम दोनों मित्र भी उस दिन अपने दान-पात्रों में अत्यधिक छलोछल हरिजन फंड एकत्रित कर उसे व्यवस्थापकजी को सौंपने आ रहे थे । आते आते, बीच बीच में विनोद करने वाले बापू के सामने हमनें भी विनोद में हँसते-हँसते उस दिन की प्रार्थना का भजन दोहराया "राम रतन धन पायो, हरिजन फंड धन पायो", बापू के चरणों में ही हमने हमारे दान-पात्र धर दिये और बापू भी हँस पड़े । बोले : "तुम दोनों बड़े शरारती भी हो और नया भजन भी अच्छा जोड़ कर गा लेते हो ! कहीं संगीत-बंगीत सीखा हैं क्या ? और भजन भी जनते हो क्या ?"

"हाँ जी, बापूजी ! बहु पुण्य केरा पुंजथी शुभ देह मानवनो मळ्यो"

मुझ से यह उत्तर सुनकर तो बापू और प्रसन्न होकर बोले : "अरे ! यह तो रायचंदभाई का लिखा हुआ है । तुमने कहाँ से सीखा, बेटे ?"

"मेरे पिताजी से । माँ भी सुबह चक्की पिसते यह गुनगुनाती रहती है ।"

"बहुत अच्छा..... कभी मुझे पूरा सुनाना प्रार्थना में ।"

कहते हुए प्रसन्नमुख बापू अपने कमरे में चले गये और मैं अपने घर की ओर आनन्दोल्लास से साइकिल चलाते चलाते "रामरतन धन" और "बहु पुण्य केरा" दोनों भजन गाता-गुनगुनाता हुआ ।

घर आकर जब पूज्य माता-पिता और सारे परिवार को यह सारी घटना सुनायी तो उनके सभी के आनन्द का ठिकाना ना रहा । इस आनन्द से सारी 'आनन्दी कुटी' गुँज उठी और हम सब भजनगान करते करते आनन्द-निद्रा में चले गये ।

तीसरे दिन डा. दिनशा और उनकी धर्मपत्नी गुलबाई दोनों सामने ही मिल गये । बोले :

"काले टमे शुं भजन जोडियुं ! बापूने य हसावी डीधा ।"

(कल तुमने क्या भजन जोड़ दिया और बापू को भी हँसा दिया !)

दो दिन से हम दोनों मित्र निरीक्षण कर रहे थे कि इतनी प्रवृत्तियाँ और राष्ट्र के स्वातंत्र्य-आंदोलन की जिम्मेदारियों के होते हुए भी बापू बीच बीच में कैसा विनोद कर लेते थे । इसे लक्ष्यकर डाक्टर साहब को हमने उत्तर दिया :

"दिनशाजी ! बापूना विनोदे ज अमने आवी मजाक सुझाड़ी... ।"

और हम तीनों बापू के कमरे पर पहुँचते पहुँचते दिनशाजी की मीठी लताड़ सुनते गये : "भारे शरारती...!" फिर वे और हम सब चुप हो गये । बापू को प्रणाम कर कमरे के दरवाज़े पर जाउं उतने में तो दिनशाजी ने बापू से कहा : "बापू ! आपनो (णो) आ भजनिक वोलन्टीयर आवी गयो छे !" बापूने हँसकर पूछा : "बेटा ! शुं नाम छे तारुं ? जवाब दिया : "प्रताप ।" दिनशा ने भी मज़ाक में कहा "महाराणा प्रताप !" बापू फिर हँस पड़े । पूछा –

"जंग कोनी सामे करशो ?" (युद्ध किसके सामने करेंगे ?)

मैंने विनम्रता से उत्तर दिया : "अंग्रेजो सामे, देशनी गुलामी सामे..."

"सारुं, पण अहिंसाथी" (अच्छा, परंतु अहिंसापूर्वक) । बापू लिखने बैठ गये और यह बड़ी युद्ध-शिक्षा लेकर हम अपने अपने दिनभर के कर्तव्यों में लग गये । उस दिन लगातार तांता लगा रहा अनेक नेताओं का – सरदार, जवाहरलालजी, मौलाना, इत्यादि । सभी के दर्शन का हमें मुफ़्त में लाभ मिल जाता था, बापू गांधी के स्वयंसेवक जो हम थे !

उन सब के और सायं प्रार्थना करते बापू के भी अपने 'डिब्बा केमरे' में उस दिन कुछ फॉटो खींचते हुए हम घर लौटे । हरिजन-फंड तो एकत्रित कर ही दिया था ।

रात दो बजे सोना, चार बजे उठ जाना

दूसरे-चौथे दिन मेरी ड्युटी रात की होने पर सायं-प्रार्थना के समय ही मैं जुड़ गया । सहपाठी मित्र प्रताप तब अपने घर गया ।

उस रात बापू के कमरे के उनके सूती शयन-पलंग को उठाकर उसकी जगह बदलने का हमें मौका मिला । लोगों के जाने के बाद भी उस पर सोने के बजाय तकिये के सहारे बैठे बैठे देरी तक बापू कुछ लिखते रहे । शायद 'हरिजन बंधु' के लेख थे वे ।

जब वे सोने के लिए लेटे तब रात के दो बज गये थे !

और जब सोकर उठे तब, मैंने बराबर नोट किया था, ठीक चार बजे थे ! न कोई घंटी, न कोई अँलर्म !! न कोई थकान, न कोई सर्दी का दबाव !!! वही चित्त-प्रसन्नता, वही मुस्कान...!!!

अपना प्रात: कर्म निपटाना, प्रार्थना में मौन बैठ जाना, चरखा कांतना सब कार्य सूर्यवत् नियमित गति से चलता रहा और मैं दंग होकर सबु चुपचाप देखता रहा । उनकी तो कमाल की योगनिद्रा थी !

प्रातः अपने घर लौटते हुए मेरे अंतर्मन से शब्द निकल पड़े थे :–

"कमाल की योग-निद्रा : "रात दो बजे सोना, चार बजे उठ जाना ।"

शायद आहार-जय, आसनजय के बाद यह निद्रा-जय भी उन्होंने अपने आध्यात्मिक मार्गदर्शक श्री रायचंदभाई से सीखकर सिद्ध कर लिया था, यह मैंने गहन चिंतन के बाद बहुत वर्षों के पश्चात् समझा था ।

क्या विरल योगी थे बापू भी !

निद्राजयी, प्रवृत्तिकार्यजयी, कर्मयोगी, निसर्गोपचार-प्रयोगी, प्रसन्न विनोदी, बाल-प्रेमी... क्या क्या कहें ? क्या क्या लिखें ? ऐसे समग्र योगी का तो निकट-निवासी को ही पता चले ! हम बड़े धन्य थे ऐसे निकट-निवासी एक रातभर के भी बनने पर !! अकल-कला खेलत नर ज्ञानी, नर योगी !!!

गरीबी दूर करने स्वदेशी, कताई और खादी

बापू-निश्रा का पाँचवा दिन भी फिर कोई नया सत्य उजागर करनेवाला था ।

उस दिन भी मुझे रात को ही अपना फर्ज़ अदा करना था ।

शायद रविवार का दिन था । सायं-प्रार्थना में बड़ी भीड़ उमड़ी थी । हमारे विद्यालय से भी कुछ और सहपाठी छात्र-छात्राएँ प्रार्थना समय के हरिजन-फंड एकत्र करने हेतु पधारे थे । मित्र प्रताप दिन भर का फर्ज़ अदा कर प्रार्थना उपरान्त अपने घर साइकिल पर लौट जानेवाला था । इधर आये हुए सभी छात्र-छात्राओं ने भी हमारी भाँति अत्यधिक फंड एकत्रित किया था और बापू के चरणों में वह रखकर उस निमित्त से दर्शन का लाभ वे चुकना नहीं चाहते थे । उनमें से दो छात्राएँ बापू के चरणों तक पहुँच गईं – रंजन और पुष्पा । दान-पत्र छलाछल-लबालब देखकर प्रसन्न बापू ने पूछा "शुं नाम छे तारुं, दिकरा ?" (क्या नाम है तुम्हारा, बिटिया ?)

"पुष्पा, पुष्पा भगत !" "तारुं ? : "रंजन" ।

"आज फंड तो घणुं भेगुं कर्युं, पण रोज गरीबोनुं कोई सेवाकार्य पण करे छे के ?"

("आज फंड तो बहुत एकत्रित किया, परंतु रोज़ गरीबों का कोई सेवा-कार्य भी करती हो क्या ?)

"हा बापू । स्कूल जतां गणपतिना मंदिर पासे, बेठेला गरीब भिखारीने रोज एक पैसो नाखती जाउं छुं"

(हाँ बापू । स्कूल जाते समय गणपति मंदिर के पास बैठे हुए गरीब भिखारी को रोज एक पैसा देकर जाती हूँ ।)

"ए तो सारुं, पण तेथी तेनी गरीबी सदा माटे दूर थई जशे के ?"

(वह तो अच्छा है, परंतु उससे उसकी गरीबी सदा के लिये दूर हो जायगी क्या ?")

छात्रा सोच में पड़ गई ।

"जो बेटा, गरीबी दूर करवा स्वदेशी अपनाववुं पडशे. ते माटे पहेलां तारे य कांतता शीखवुं पड़शे, ने भिखारीने य शीखववुं पड़शे । बोल, करीश ?"

(देख बिटिया गरीबी दूर करने हेतु स्वदेशी अपनाना पड़ेगा । उस हेतु प्रथम तुम्हें भी कांतना सीखना होगा और भिखारी को भी कांतना सीखाना होगा । बोल करेगी न ?)

"हा बापू ! जरुर करीश" (हाँ बापू ! अवश्य करूंगी ।) बापू खुश हुए । आशीर्वाद दिये ।

पुष्पा-रंजन दोनों बड़ी प्रभावित होकर घर लौटीं । कांतना सीखा ओर कुछ दिनों में खद्दर के वस्त्र भी पहनना शुरु कर दिया । क्या, कैसा जादुई प्रभाव बापू के वचनों और गरीबी हटाने के उपायों का ! एक नया सत्य ।

अपने अध्यापकों-स्वजनों का प्रार्थना सभा में आना

एक दिन पूज्य बापू की सायं प्रार्थना सभा में अपने विद्यालयीन अध्यापकों का आगमन हुआ । हमारे रविवार पेठ पूना के आर.सी.एम. गुजराती हाईस्कूल के पू. प्राचार्य श्री दादावाले साहब, पू. अध्यापक श्री लालजी गोहिल साहब (दोनों चुस्त गांधीवादी, खद्दरधारी) जो कि दोनों ही तेरे प्रति सदा अनुग्रह-वात्सल्य रखते थे, एवं संस्कृत के अध्यापक श्री कोपरकरजी, प्रसन्न मृदु चित्रकला अध्यापक श्री नगरकरजी आदि पूज्य बापू के दर्शनार्थ पधारे एवं प्रार्थनासभा में बिराजे । श्री दादावाले साहब अपने श्वेत खादी के कोट-पतलुन में एवं श्री गोहिल साहब खादी के झुब्बा-धोती में बड़े ही शोभित दिखते थे और सामने अर्ध दीवार-पार की पाट पर प्रशांत मुद्रा में प्रार्थना लीन मौन विराजित पूज्य बापू को देख देखकर बड़े ही प्रसन्न हो रहे थे । प्रार्थना पूर्ण होने पर हम दोनों स्कूली-स्वयंसेवक उनके समक्ष अपना हरिजन फंड पात्र लेकर खड़े हो गए । खुश होकर उन सभी ने हमें पात्र में पैसे भी दिए और यह हरिजन फंड भी हमें एकत्रित करते हुए देखकर कृतार्थ होकर आशीर्वाद भी दिए ।

वैसे ही दूसरे दिन शाम को हमारे पूज्य स्वजन-परिजन भी पधारे – जन्म से ही श्रीमद्-पदों की लोरी सुनाने और समझाने वाले पूज्य माता-पिता, उपकारक अग्रज पू. चंदुभाई, नन्हा क्रान्तिकार अनुज चि. कीर्ति एवं अन्य परिवारजन । सभी पूज्य बापू के दर्शन पाकर धन्य हुए और हमें उनकी सेवा का लाभ पाते देखकर कृतकृत्य ।

अपने स्वजनों को यहाँ देखकर हम प्रसन्न हो रहे थे तब हमें प्रश्न उठता था कि पूज्य बापू को अपने कस्तुरबा-महादेव भाई आदि खोये हुए स्वजन याद आते होंगे या नहीं ?

1945 अंत एवं 1946 के प्रारम्भ के वे दिन, गतिशील भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के अंतिम पडाव के महत्त्व के दिन थे । अपनी थोड़ी-सी अस्वस्थ शरीरावस्था होते हुए भी बापू आझादी-प्राप्ति की अनेक गतिविधियाँ और चर्चा-चिंतनों-विचारणाओं में निरंतर बड़े ही सक्रिय थे । हम बराबर अवलोकन करते रहते थे कि वे कितनी सजगता दक्षतापूर्वक अन्य सारे नेताओं एवं आगंतुकों से बातचीतों में, मिटिंगों में व्यस्त रहते थे । आचार्य नरेन्द्र देव, जे.पी., पंडित जवाहरलाल नेहरु, सरदार

वल्लभभाई पटेल, मौलाना आझाद आदि का आवागमन होता रहता था। तब बापू अपने निजी स्वजनों कस्तुरबा एवं महादेवभाई देसाई को तो पीछे छोड़ आये थे, खो चुके थे – आगाखान महल पूना के ही अपने उस कारावास के दौरान। बारबार एक धुनवत् आगाखान महल और पर्णकुटि की अपनी साइकिलों पर यात्रा करनेवाले हम दोनों मित्र – प्रताप दत्ताणी और मैं तब कभी कभी बापू को देखकर यह जानने की कोशिश करते थे कि बापू को बा-महादेव जैसे इन सर्वाधिक निकट दिवंगत स्वजनों की स्मृति कोई संवेदन जगाती होगी या नहीं ? सभी से प्रेम और वात्सल्य से भरे बापू यह थोड़े ही भूल सकते होंगे ?... परंतु सदा सतत कार्यरत एवं ईश्वर प्रार्थनारत स्थितप्रज्ञ बापू, शायद अपनी एकलता अपने भीतर में ही संजोकर अपनी यह स्मृति-संवेदना, स्वजन-अभाव, कहीं दिखने नहीं देते थे। शायद अपनी मौन प्रार्थना में उन्हें याद कर लेते होंगे, जिसकी कि कई कवियों ने परिकल्पनाएँ की हैं। हम दोनों मित्रों के शोधक कुमार-मानस तब बापू की इस अंत:स्थिति भाँपने का प्रयत्न करते रहते।

देश की स्वातंत्र्य-यात्रा के उन अंतिम पडावों के दौरान बापू की यह अंत:स्थिति तब कैसी रही होगी वह तब तो हमारे कोमल कुमार-मानस पर स्पष्ट नहीं हो सकती थी, परंतु आज जब उन दिनों की उनकी व्यस्तता सोचते हैं, तब कई प्रश्नदृश्य बापू की अंतरावस्था के बावजूद उनकी अपनी कार्यदक्षता एवं जागृत राष्ट्रनेतृत्व-क्षमता से भरे स्मृति में उभर आते हैं। प्रश्न उठता रहा है सदा कि कैसे, किस शक्ति के आधार पर बापू यह सब, यह अंतर-बाह्य निबाह रहे थे ?

देश की परिस्थिति के बीच, अन्य सजग चिंतकों, निकटवर्ती दर्शकों, इतिहासज्ञों ने उन दिनों के बापू के कार्य-कलापों को जो शब्दबद्ध किए हैं, उनमें से निम्नलिखित एकाध में से उनकी यह बाह्यांतर अवस्था कुछ खोजने का प्रयत्नमात्र कर सकते हैं :-

''टुकड़े करके राज्य चलाएँ' के अंग्रेजों के सिध्धांत के अनुसार ही कोंग्रेस के सामने मुस्लीम लीग की स्थापना हुई... कोंग्रेस की स्वतंत्रता की मांग के सामने लीग को खड़ी करने का निर्णय अंग्रेज हुकमरानों ने किया। 1937 के चुनाव के समय बड़ी कठिनाई से अंकुर निकालती हुई लीग को 1946 के चुनाव के समय फुले-फाले वृक्ष की तरह जो देखा जा सकता है उसके पीछे अंग्रेजों के खाद-पानी डालने का बहुत बड़ा हिस्सा है।

''आखिरकार निर्णय माउन्टबेटन ने ही किया। गांधी और नहेरु के मत की विरुद्ध जाकर भी उन्होंने जिन्ना की हठ के सामने पल्ला झुका दिया। और इस प्रकार तीस करोड़ हिन्दुओं की नव करोड मुस्लीमों के साथ पेरिटी (समकक्षता) मनवाई गई और जिन्ना ही हिन्दुस्तान के सारे मुस्लीमों के प्रतिनिधि होने का जो दावा करते थे वह भी मान्य हुआ।''

(इस) सारी घटना के सम्बन्ध में गांधीजी के सचिव-जीवन चरित्रकार प्यारेलाल लिखते हैं – ''मुस्लीम लीग के दिल में सच्चाई न हो तो भी संयुक्त अपील माउन्टबेटन के कहने से करने में आई होने से, परोक्ष रूप से वाइसरोय भी उसके पक्षकार बनते थे और वह वस्तु उसके संपूर्ण अमल करने का बोझ उन पर डालती है और उस फर्ज़ को अदा करने में वे चुकेंगे नहीं ऐसी गांधीजी

की मान्यता के विषय में वाइसरोय ने बाद में कहा कि वे ऐसा गर्भितार्थ स्वीकार नहीं करते ।" (प्यारेलाल – 'पूर्णाहुति' पृ. 112)

इन सारे पुनरुध्धरणों का आधार बापू के पूर्व-सचिव, पुत्रवत् श्री महादेवभाई देसाई के चिंतक, सजग निरीक्षक सुपुत्र श्री नारायण देसाई का अभी का (2013 का) हृदयविदारक गुजराती पुस्तक "जिगरना चीरा" है । अश्रुभीनी स्याही से लिखे गये एक शोकांतिक-करुणान्त नाटक के समान इस पुस्तक में उन्होंने बापू के, भग्नहृदय बन चुके बापू के, 1947-48 के अंतिम दिनों का जो हृदयद्रावक चितार प्रस्तुत किया है उसकी सारी पूर्व घटनाएं एवं परिस्थितियाँ यहाँ 1945-1946 में आकार ले रहीं थीं बीज रूप में । ऊपर उनका कुछ संकेत किया है बापू की अंतरावस्था का बाहरी परिस्थितियों के बीच में से कुछ झाँकने हेतु । तब तो हम जैसे स्वयंसेवक यह सारा समझने के लिए छोटे और अक्षम थे । परंतु उपर्युक्त राष्ट्र-घटनाओं के सन्दर्भ में बापू की तब की 1945-46 की एवं बाद की घटने वाली 1947-48 की वेदना भरी अंत:स्थिति को आज समझने में एक भूमिका प्राप्त होती है । श्री नारायण देसाई की उपर्युक्त पुस्तक बापू के अंतिम दिनों के टूटे हुए दिल की अनकही कथा-व्यथा कहती है ।

बाहरी परिस्थिति बीच अंतरावस्था : राष्ट्रचिंता बीच दरिद्र-चिंता, निसर्गोपचार, रामनाम

बापू की सारी बाहरी-भीतरी परिस्थितियों का उनका आधार था – प्रार्थना, रामनाम, सत्-सत्यमय आत्मस्मृति-परमात्म स्तुति का सातत्य । स्वात्मा का होश और परमात्मा का – 'राम' का शरणग्रहण । प्रभु प्रति इस समर्पणमय भक्ति का एवं अपने आत्मस्वरूप का बोध उन्हों ने बरसों पूर्व से अपने आध्यात्मिक मार्गदर्शक श्रीमद् राजचंद्रजी से जो पाया था, उसे अपने जीवनांत निकट के इन दिनों तक उन्होंने साकार किया था । किसी भी बाहरी धर्म के लॅबल के बिना वे अपने आंतरिक 'सत्य' धर्ममय, आंतरिक राम की भक्ति में लीन थे । श्रीमद् राजचंद्रजी ने उन्हें इस भीतरी आत्म-बोध की स्मृति दृढ़ करवाई थी और बाहरी मत-पंथमय भेदों से वे मुक्त होकर उनसे ऊपर उठ गये थे । श्रीमद्जी का प्रथम बोध शायद यह था :-

"तुम किसी भी धर्म को मानते हो उसके विषय में मेरा पक्षपात नहीं है... जिस राह से संसार का मल-राग-द्वेषादि-से मुक्त हुआ जा सके, उस भक्ति, उस धर्म और उस सदाचार का तुम सेवन करना... ।" (पुष्पमाला-15)

स्वयं की १० वर्ष की लघुवय में श्रीमद्जी द्वारा लिखित ऐसे उत्तम गहन विचारों की बापू पर अमिट छाप अंकित हुई थी । इतनी छोटी-सी बाल्यावस्था में लिखित इस 'पुष्पमाला' पर बापू मुग्ध थे । बाद में उन्होंने प्रज्ञाचक्षु पंडित श्री सुखलालजी से कहा भी था कि, "अरे ! यह 'पुष्पमाला' तो पूर्वजन्म की, (पूर्व जन्म के अर्जित ज्ञान की) साक्षी है !"

तो ऐसे भीतरी भक्तिधर्म का, उसके प्रतीकरूप जिस 'रामनाम' का उन्हों ने सतत आश्रय लिया था वह उनके सारे बाहरी-भीतरी कार्यकलापों में व्यक्त होता था । चाहे राजनीति-राष्ट्रनीति हो, चाहे निसर्गोपचार हो, चाहे दरीद्रों का उत्थान-कार्य हो । अंतिम दो निसर्गोपचार-निसर्गमय जीवन और

उसका प्रचार बापूने स्वयं के जीवन से प्रारम्भ किया था। पंद्रह दिनों के हमारे कुमारावस्था के उनकी अल्प-सी सेवा की अवधि में यह हम दोनों स्वयंसेवक मित्रों ने अपनी आँखों से देखा था - प्रातः काल से रात तक की उनकी समग्र दिनचर्या में। चार बजे उठते, प्रार्थनारत होते, चरखा कांतने आदि उनके मौनमय रामनाम-साधन के पश्चात् सूर्योदय पूर्व के मिट्टी-पट्टी के लेप के बाद वे बैठ जाते थे, या कभी कभी घूम लेते थे सूर्यदर्शन-सूर्यस्नान करते हुए। रक्तरंगी अरुणिमा युक्त उस सूर्य के प्रथम किरणों के बीच पूज्य बापू का वह ध्यानमय सूर्यदर्शन कितना सुंदर लगता था ! स्वयं बापू ने ही उस दर्शन से अभिभूत होकर लिखा है —

"सूर्योदय दर्शन में जो सौंदर्य रहा हुआ है, जो नाटक रहा हुआ है, वह अन्यत्र कहीं भी देखने को नहीं मिलेगा।" ('मंगल प्रभात')

बापू की इस निसर्ग-निष्ठा एवं निसर्गोपचार निष्ठा में उनकी रामनाम-प्रभुस्मरण-की साधना भी छिपी हुई थी और निसर्गोपचार विषय पर लिखित अॅडोल्फ जुस्ट के **'Return to Nature'** (कुदरतमय जीवन) जैसे कई प्रभावित करनेवाले पुस्तकों का अध्ययन भी।

इन सभी का ही परिणाम था उनका इस डा. दिनशा मेहता के निसर्गोपचार केन्द्र पर, राष्ट्रीय गतिविधियों को लेकर भी, ठहरना। तब हम यह सारा अपनी आँखों से दंग होकर देख और सोच रहे थे, जिसका कि हमारे अपने ही भावी-जीवन में गहरा प्रभाव पड़नेवाला था — हम भी बापू की निसर्गनिष्ठा को देखते देखते निसर्ग-उपासक होनेवाले थे। अस्तु।

निसर्गोपचार-निष्ठा

तब, शायद जनवरी 1946 के आरम्भ में, बापू डा. दिनशा महेता के साथ वायु-परिवर्तन हेतु, पूना से निकटस्थ तीसरे रेल्वेस्टेशन ऐसे 'उरुली कांचन' गये। वहाँ की जलवायु उन्हें बड़ी अच्छी प्रतीत हुई और उन्होंने वहाँ पर भी 'निसर्गोपचार आश्रम, दरिद्र-दर्दियों की प्रथम सेवा हेतु स्थापित करने की इच्छा व्यक्त की। तत्पश्चात् वह शीघ्र कार्यान्वित हुई और अप्रैल (शायद 22-23 तारीख को) वहाँ यह आश्रम सुस्थापित भी हो गया ! उसे विनोबाजी के साधक लघु बंधु श्री बालकोबाजी ने आजीवन न केवल सम्हाला, पर अपने तीसरे स्टेज के टी.बी. को भी सूर्यस्नान द्वारा संपूर्ण निर्मूल किया। बापू की निसर्गोपचार-निष्ठा का यह एक ज्वलंत प्रभावक दृष्टांत बना। -

तब बापू एक ओर से उरुलीकांचन के इस निसर्गोपचार आश्रम के प्रेरक-स्थापक बने (जिसे बाद में श्री मोरारजीभाई देसाई ने भी अध्यक्ष रूप में अधिष्ठित किया) और दूसरी ओर से डा. दिनशा महेता के पूना के इस Nature Cure Clinic के, दरिद्र-दर्दियों को सेवा हेतू 'ट्रस्टी' भी बने। उन्होंने स्वयं इस बात को ज़ोर देकर "दीनों का निसर्गोपचार, 'दिनशा' के स्थान से ही अभिवृद्धि कर, बढ़ाया :-

"पाठक जानते हैं कि मैं, डो. दिनशा महेता और श्री जहांगीर पटेल के साथ उनके पूना स्थित चिकित्सालय में ट्रस्टी बना हूँ। इस वर्ष १ जनवरी से ट्रस्ट की एक शर्त है कि चिकित्सालय धनिकों के स्थान पर दरिद्रजनों के लिये चलाना होगा। विचार मेरा था, परंतु में प्रवास में रहने से मेरी गैरहाज़िरी

में शर्त का संपूर्ण पालन नहीं हुआ है। परंतु मैं इस माह पूना जाने की आशा रखता हूँ। मेरी उत्कट (तीव्र) ईच्छा है कि अगर धनिक दर्दी आयें तो वे उनकी संपूर्ण क्षमता अनुसार फीस चुकायें। और फिर भी गरीबों के वॉर्ड में उनके समान ही रहें। मैं जानता हूँ कि इस प्रकार करने से अब से वे ज़्यादा लाभ पा सकेंगे। जो लोग इस शर्त का पालन करना नहीं चाहते हों, उन्हें चिकित्सालय पर जाने की तकलीफ़ उठाने की ज़रुरत नहीं है। यह नियम आवश्यक है।

''इसके उपरान्त उनकी बीमारी के उपचार से गरीब मरीज़ों को भी यह सीखने मिलेगा कि तंदुरस्त जीवन किस प्रकार जीया जा सकता है। आज तो एक सामान्य मान्यता है कि आयुर्वेद या ॲलोपथी से निसर्गोपचार अधिक खर्चीला है। अगर यह सही साबित होता है तो मुझे निष्फलता का स्वीकार करना चाहिए। परंतु मैं मानता हूँ कि इससे विपरित (विरुद्ध) जो है वह सही है। और मेरे अनुभव भी उसका समर्थन करते हैं। निसर्गोपचार के चिकित्सक का फर्ज़ है कि वे केवल शरीर की ही देखभाल न करें, परंतु दर्दी की आत्मा की ओर भी ध्यान दें और चिकित्सा करें। आत्मा के लिये सबसे उत्तम नुस्खा (उपाय) रामनाम है। आज मैं रामनाम लेने के तरीके (रीतियाँ) या अर्थ में उतरता नहीं हूँ। मैं मात्र इतना ही कहना चाहता हूँ कि गरीब दर्दी को ज़्यादा दवाई लेने की ज़रुरत नहीं है। कुदरत हमें क्या सीखा रही है उस बात का अज्ञान ही उन्हें अंध बनाता है। अगर पूना का प्रयोग सफल होगा तो डो. दिनशा महेता का निसर्गोपचार विद्यापीठ का स्वप्न साकार होगा।''*

''देश हित के इस महान कार्य में भारत के सच्चे निसर्गोपचार के तबीबों (चिकित्सकों) की मदद बहुत ही ज़रुरी है। उसमें पैसे कमाने का कोई सवाल ही नहीं पैदा होता है। गरीबों की सेवा करने के उत्साह से जो भरे हुए (निमग्न/सराबोर) हैं, वैसे लोगों की ज़रुरत है। डोक्टर (चिकित्सक) के पद के लिए कोई खास (निश्चित/निर्धारित) मापदंड (प्रतिमान, अर्हता) नहीं है। जो सच्चा सेवक है, वही सच्चा तबीब, डोक्टर, चिकित्सक है। जिनके पास अनुभव और ज्ञान है और सेवा करने की जिनकी तत्परता है, वे अपनी योग्यता की सूची (यादी, विगत, विवरण) के साथ लिख सकते हैं। जिनकी योग्यता स्तरीय (पर्याप्तं/धोरण मुताबिक, standard) नहीं होगी उन्हें उत्तर नहीं दिया जाएगा।''

— महात्मा गांधी : 'विश्वभारती' ग्रंथ का लेखानुवाद।

बापू के गरीबों और निसर्गोपचार-निष्ठा विषयक इन स्पष्ट विचारों का यह अनुवाद करते हुए अंत में अनुवादिका कवयित्री सुश्री कालिन्दी परीख (अमरेली-सौराष्ट्र) लिखती है कि :-

''इस प्रकार यहाँ देखा जा सकता है कि पू. बापू के हृदय में गरीब मरीज़ों की कितनी चिंता और दरकार थे। फिर अनावश्यक एवं खर्चीली डोक्टरी चिकित्सा के स्थान पर निसर्गोपचार तो सभी के बस की बात है, सभी के बस होना चाहिए।

* बरसों पूर्व की बापू की 'निसर्गोपचार विद्यापीठ' की यह आर्ष-भावना अब 2014-16 में डो. दिनशा महेता के ही उसी पूना के Nature Cure के स्थान पर साकार हो रही है।

"आज डोक्टरी चिकित्सा खर्चीली बनी जाती रही है। सामान्य-मध्यम वर्ग के लिए भी जहाँ ऐसी महँगी चिकित्सा संभव नहीं है, वहाँ गरीब या पददलित वर्ग की तो बात ही क्या करें ? इस परिस्थिति में पूज्य गांधीजी के निसर्गोपचार केन्द्र संबंधित उपर्युक्त विचार यदि प्रयोग में लाये जायँ तो बहुत बड़ा काम हो सकता है।"

('गोरक्षापात्र' मासिक : 1-6-2016)

कितनी गहन सच्चाई है, आज के घोर खर्चीले और फिर भी बहुधा असफल एवं निरर्थक ऐसे, बड़ी ही बोलबाला वाले एलॉपैथिक उपचारों और धूम-धडांग ऑपरेशनों के सन्दर्भ में बापू की उपर्युक्त आर्ष-दृष्टि में !

ये सर्वकालीन 'महत्त्वपूर्ण आर्ष-विचार एवं **'Prevention is better than care'** (पश्चात् उपचार के बजाय पूर्व से ही रोगों की रोकथाम : ऐसी प्राकृतिक जीवनशैली), दर्शानेवाली पू. बापू द्वारा लिखित 'आरोग्य की कुंजी' **(Key to Health)** निसर्गोपचार, इ. सरलतम पुस्तकों को आज के **Mad-Medicine-Minded** पागल लोग, अपने ही हित में अपनायेंगे ?

महँगी ऐलोपैथिक चिकित्सा पद्धति के विकल्प के रूप में देश में अन्य अनेक प्राकृतिक विद्यापीठों की भाँति, बापू के स्वयं के चरण जहाँ पड़े हैं, जहाँ उन्होंने निसर्गोपचार-निष्ठा से भरे आर्ष-स्वप्न देखे हैं, वहाँ डो. दिनशा के उसी निसर्गोपचार केन्द्र **Nature Care** के प्रकृति-तीर्थवत् "बापू-स्मारक" के से स्थान पर, आज बापू की कल्पना का ऐसा प्रतिष्ठान प्रस्थापित हो चुका है। इस लेखक ने स्वयं उसकी मुलाकात ली है। इन संस्थापनाओं के पूर्व डो. दिनशा ने वहाँ स्थापित की हुई **"Servants of God Society"** का भी यह लेखक साक्षी और प्रत्यक्षदर्शी रहा है। डो. दिनशा जी से घनिष्ठ संबंध जो इस किशोर-कुमार आयु में बना था, वह आगे भी, बापू के बाद भी चला है। न केवल दिनशाजी से और उनके इस **Nature Care** केन्द्र और "निसर्गोपचार दर्शन" से, अपितु बापू-स्थापित उरुलींकांचन के निसर्गोपचार आश्रम से वहाँ संनिष्ठ बापू-भक्त आजीवन निसर्गोपचारक बालकोबानी भावे से और उन्मुक्त निसर्ग-निकेतन-विहारी बापू के प्रधान शिष्य बाबा विनोबाजी से भी आगे संबंधित होने का बीजारोपण यहीं से हुआ था ! यह भी कैसा सुभग संयोग कि सभी "बा" शब्द नामधारक "बापू", "बाबा" और "बालकोबा" : निसर्गोपचार-निष्ठा के त्रिमूर्ति, मेरे जीवन में यहीं से प्राप्त हुए !! कितना बड़ा यह सौभाग्य !!!

निसर्गोपचार से विशेष "अपूर्व अवसर" का बाह्यांतर निर्ग्रंथदशा का जीवनदर्शन

डो. दिनशा जी ने ही जब से मेरे भजन-गान और श्रीमद् राजचन्द्रजी के पदों की बात हुई थी, तब से बापू की "आत्मकथा" किताब मुझे देने का विचार किया था। जब पंद्रह दिन का बापू-निश्रा का मेरा और मेरे मित्र का स्वयंसेवक-सेवा कार्य पूर्ण होने जा रहा था, तब उन्होंने अपनी इस भावना की स्मृति देकर यह पुस्तक मुझे प्रेम से भेंट देते हुए कहा था :-

"आ पुस्तक ने बराबर वांचजो – ते दिवसे बापूए कविश्री रायचंदभाई के भजन-पद की जो बात कही थीं, उनके बारे में बापूने इसमें बहुत कुछ लिखा है।"

"बहुत बहुत आभार" कहकर किताब लेकर बड़े आनंदित होकर हम दोनों मित्र उस दिन बिदा हुए थे ।

नियति की भी कैसी आयोजना कि इस बापू-निश्रा के बाद मेरे जीवन में निसर्गोपचार-निष्ठा के उपरान्त श्रीमद् राजचन्द्रजी का सुदीर्घ प्रवेश होनेवाला था । कुछ अप्रत्याशित, आकस्मिक घटनाएं मेरे निकट भविष्य में घटनेवाली थीं ।

इन घटनाओं में 7 अप्रैल 1946 के, विद्यालय-सहाध्यायिनी कु. रंजन के टाइफोइड में अचानक असमय देहावसान ने एक ओर से मुझे भगवान ऋषभदेव के जीवन के नीलांजना के असमय देहावसान-जनित वैराग्यभाववत् अपने विद्याभ्यास के बीच बड़ा वैराग्यवासित बना दिया । तो दूसरी ओर से तत्पश्चात 21 अक्तूबर 1946 के अपने देहजन्म दिन पर परम उपकारक पूज्य पिताजीने मुझे अकल्पित ताना मार कर, एक झटका देकर इस भीतरी वैराग्यभाव को अभिवर्धित कर दिया ! उन्होंने गांधी बापू के, मेरे, सभी के महान उपकारक ऐसे श्रीमद् राजचन्द्रजी के महाजीवन में, अनजाने में, एक भावी संकेत रूप मेरा आजीवन प्रवेश करा दिया :-

"देख ! इस महापुरुष ने तुम्हारे जैसी इस 16 सोलह वर्ष की छोटी-आयु में केवल तीन दिन में ही यह अद्‌भुत किताब 'मोक्षमाला' लिख डाली है !! जीवन में तुम क्या करोगे ? तुम्हारे जन्मदिन पर तुम्हें यह मूल्यवान भेट दे रहा हूँ । इसे गहराई से पढ़कर और अपनाकर अपने जीवन में कुछ कर जाओ !!!"

"बड़ा भारी उपकार आपका, पिताजी ! आज मैं धन्य हुआ । ज़रुर कुछ करके रहूँगा'...।"

विनयपूर्वक यह कहकर, किताब पाकर मैं आनंद विभोर हो उठा । पूज्य पिताजी ने, कि जिन्होंने मुझे बालपन से ही इसी पुस्तक के लेखक श्रीमद्‌जी के अनेक मधुर पद स्वयं गा गाकर वत्सल-प्रेम से सिखलाये थे, उन्हीं के इन प्रेरक उपालम्भ-से उपकारक शब्द-बाणों ने तभी से मेरा जीवन बदल डाला ।

उसी समय वतन अमरेली के उस सॅनॅटोरियम से सीधा राजमहल-उद्यान एवं बाद में स्मशान — दोनों एकान्त स्थानों पर जाकर उसी, एक दिन में ही बड़े भावोल्लास सह संपूर्ण 'मोक्षमाला' को पढ़ लिया । सचमुच ही उस महाग्रंथ के जादुभरे अमृतवचनों से जीवन शीघ्र ही पूरा परिवर्तित-रूपांतरित होने लगा । तत्काल ही कई साधनाएँ प्रारम्भ हो गई — प्रथम रात्रिभोजन त्याग एवं कंदमूलादि अभक्ष्य सर्व त्याग से लेकर सप्तव्यसनत्याग तक । स्वाध्याय का और लेखन का चाव बढ़ गया । राज-पद गान अधिक गूँज उठे । पढ़ना-लिखना-गाना एक धुनवत् चला । सहाध्यायिनी रंजन की आकस्मिक, असमय मृत्यु से, जो कि जीवन में देखी गई प्रथम 'अकाल-मृत्यु' थी, भीतर में वैराग्य निष्पन्न हो चुका था और उसके पूर्व बापू के सहवास और डो. दिनशा द्वारा बापू की 'आत्मकथा' के प्रदान ने जीवन में एक आदर्शवत् हलचल तो मचा ही दी थी — इन घटनाओं के पश्चात् इस महा-उपकारक 'मोक्षमाला' के पिताजी के द्वारा किये गये अद्‌भुत, अपूर्व प्रदान ने तो जीवन में, बाह्यांतर जीवन समग्र में क्या क्या, कैसे कैसे परिवर्तन ला दिये थे ! 'जैन सिध्धान्त' आदि मासिक-

पत्रों में लिखे जा रहे मेरे लेखों-निबन्धों ने कई प्रशस्ति-पुरस्कारादि प्राप्त कराना प्रारम्भ कर दिया था। बापू एवं श्रीमद्‌जी जैसे दोनों महामानवों के अंतर्जीवन के निकट मुझ जैसे एक अबोध बाल-कुमार को कैसे लाकर रख दिया था यह सब तो एक आश्चर्यवत्‌ 'अकथ कहानी' थी ! इस भूमिका के जरिये तो भविष्य में विशाल स्तर पर कुछ अचिंत्य घटित होनेवाला था !!

बापू-बाबा-बालकोबा से निसर्गोपचार-निष्ठा एवं श्रीमद्‌ राजचन्द्रजी के परोक्ष जीवन-दर्शन से उनके ही प्रत्यक्ष प्रतिनिधिवत्‌ पांच पांच प्रेरणादाताओं की परमोपकारक प्राप्ति होने वाली थी। ये पांचों प्रत्यक्ष उपकारक सर्व प्रात: पूज्य प्रज्ञाचक्षु पं.श्री सुखलालजी, आचार्य गुरुदयाल मल्लिकजी, सुश्री विमलाजी, योगीन्द्र श्री सहजानंदघनजी एवं आत्मद्रष्टा माताजी धनदेवीजी – अन्यों के अतिरिक्त, प्रमुखरूप से इन सभी के द्वारा अनेकविध श्रीमद्‌-साहित्य-संगीत-ध्यानस्वाध्याय-शिबिरादि व्यापक निर्माणों हेतु इस अल्पज्ञ लेखक को "निमित्त", "माध्यम" बनाया जानेवाला था। अनागत भावी के गर्भ में गुप्त रहे हुए इन महासर्जनों के बीज यहीं से बोये गये थे। ये सारे उन दिनों के पश्चात्‌ 1967 से लेकर इस 2017 तक के पचास वर्ष के काल-खंड के बीच 52 बावन जितने महा-निर्माणों के रूप में, आद्यान्त गुरुकृपा से, श्रीमद्‌ राजचन्द्रजी की 150वी जन्मशताब्दी तक एक वटवृक्षवत्‌ अंकुरित और नवपल्लवित हो चुके हैं – एक चमत्कार-सी, निरंतर बह रही इस गुरुकृपा के सातत्य के परिणाम-स्वरूप, इस अल्पात्मा को एक "निमित्त" मात्र, एक "कृपाकिरण" बनाकर !

पूना की पंद्रह दिन की जनवरी 1946 तक की बापू-निश्रा छोड़कर, बाद में पूना शहर भी 1946 के जुन माह में छोड़कर जन्मभूमि अमरेली आना हुआ परिवार सह। वहाँ फिर 30 जनवरी 1948 के गांधी बापू के करुण देहावसान ने मेरा अंतर्वैराग्य इतना तो और बढ़ा दिया कि निकट के कोई परिजन-गुरुजन-छात्रमित्र वह जान नहीं पाये। गाता-गुनगुनाता रहा गायक कविमित्र श्री चन्द्रकान्त मुलाणी (शिहोर) का करुणतम विरह-विदा गीत :

"આથમતી એક સાંજને ટાણે, બાપૂએ વિદાય લીધી હતી;
ને દિ'મારા ભગ્નહૃદયે આ એક ધૂન જગાવી હતી : હે રામ ! હે રામ !"

इसी गान-धून में साथियों को, अमरेली नूतन विद्यालय के, (कि जिसे हमने तब महात्मा गांधी विद्यालय नामाभिधान कर दिया था) पू. आचार्य श्री मुलाणी साहब, आदर्श अध्यापक पू. सवाणी "बापू" आदि को जोड़ा। विद्यालय में "बापू कुटिर" बनवाई। गांधीभस्मकुम्भ वहाँ स्थापित कर नित्य प्रार्थना सभाएँ करते रहे।

पश्चात्‌काल में पूज्य पिताजी ने अमरेली में करवाये हुए प्रथम उपकारक जैनमुनि श्रीमद्‌जी-आनंदघनजी-अध्येता आत्म-मस्त श्री भुवनविजयजी के एवं स्वयं परिशोधित गांधीप्रभावित मुनिद्वय श्री संतबालजी-नानचंद्रजी 'संतशिष्य' के सत्‌-परिचयों ने मेरे वैराग्यभाव-संयम साधना तथा श्रीमद्‌ गांधीनिष्ठा को अभिवर्धित किया। तत्पश्चात्‌ मेरी विद्या-साधना गुरूकुलवासों, भारत-भ्रमण सत्संग यात्राओं, सर्वोदय भूदान-पदयात्राओं के दौरान बालकोबाजी, बाबा विनोबाजी, संगीत गुरु 'नादानंद' बापूरावजी (हैदराबाद, आं.प्र.), चिन्नम्मा माताजी (रेपल्ली), प्रज्ञाचक्षु डो. पंडितश्री सुखलालजी,

आचार्य गुरुदयाल मल्लिकजी, विदुषी विमलाताई, आदि अनेक उपर्युक्त उपकारक संतजनों ने मेरे 1952 के उपकारी पितृवियोग के विरहदुःख को भी ऊर्ध्वीकृत बनाकर मेरी वैराग्य साधना + श्रीमद्‌जी प्रणीत आत्मसाधना-जीवनसाधना को वृद्धिगत कर दिया "अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ?" के परमपद-प्राप्ति की भावना को बल देकर ।

परमकृपाळुदेव श्रीमद्‌जी निर्दिष्ट "युवावय का सर्वसंग-परित्याग परमपद को प्रदान करता है ।" — इस सूत्रानुसार सर्वसंग-परित्याग तो कर नहीं पाया अपने अल्प पुरुषार्थ के कारण, परंतु उसकी अंतर्भावना अंतस्-अभीप्सा निरंतर बनी रही । युवावय के इन १६-१८-२० वर्षों के पश्चात् के प्रायः ७० वर्षों के समग्र काल के विशाल अंतराल में घटित जीवन की, बाबा प्रेरित अहमदाबाद में 20-12-1958 के दिन बीस हज़ार बालकों के ॐ तत्सत् समूहगान निर्देशन, आदि कई विशद घटनाओं का क्या वर्णन-आलेखन करें ? सर्वत्र छाये हुए उपर्युक्त सत्पुरुषों के उपकारक सत्समागम के पश्चात् महत्त्वपूर्ण उपसर्गो-अग्निपरीक्षाओं के दौरान भी उनके अपार उपकारों का भी क्या निरुपण करें ? उन सबके पावन समागमों के बीच अध्ययन-अध्यापन के दौरान, क्रान्तिकार अनुज कीर्ति के युवावय के करुण असमय देहावसान के दौरान, पूज्य मल्लिकजी द्वारा सूचित जीवनसंगिनी सुमित्रा सह उन्हीं के पवित्र सान्निध्य में गांधीआश्रम साबरमती अहमदाबाद में 15 अगस्त 1960 को आश्रम-विधि अनुसार गृहस्थाश्रम प्रवेश — सर्वसंग परित्याग के स्थान पर-के समय, फिर अन्य कॉलेज अध्यापनों-आचार्यपद कार्यों के संघर्षों के बीच, अंत में बापू संस्थापित गूजरात विद्यापीठ के चिरस्मरणीय अध्यापन सेवाकार्य काल में दांडीयात्रा, शांतिसेनादि में सहभागी बनना और 'महासैनिक' शीर्षक श्रीमद्‌जी-गांधीजी विषयक निराले नाटक को लिखकर उस पर सर्व भारतीय श्रेष्ठ पुरस्कार प्राप्त करना, बाद में विद्यापीठ, अहमदाबाद त्यागपत्र देकर (मध्य में पू. गुरुदयाल मल्लिकजी के अप्रैल 1970 में देहत्याग बाद) बेंगलोर-हंपी-कर्नाटक के श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम पर स्थानांतरिक होकर वहाँ श्रीमद्‌जी तत्त्वाधारित जैन विद्यापीठ-जिनालयादि का आयोजन करना, फिर वहाँ के आश्रमाध्यक्ष अग्रज पू. चंदुभाई एवं आश्रम स्थापक योगीन्द्र श्री सहजानंदघनजी दोनों के अचानक असमय देहत्याग से दो बड़े वज्राघात पाकर भी उस आश्रम अधिष्ठात्री आत्मज्ञा पू. माताजी के आदेश-आशीर्वादों से श्रीमद्‌जी-रचित "श्री आत्मसिध्धि शास्त्र" का सर्वप्रथम चिरंतन रिकार्डिंग करना और वर्धमान भारती के जिनभक्ति संगीत रिकार्ड-श्रृंखला को चलाना, सुश्री विमलाताई के संरक्षण से 'सप्तभाषी आत्मसिध्धि' ग्रंथ-संपादन करना, १२ बारह विदेशयात्राओं में ध्यान-संगीत-स्वाध्याय-प्रवचनादि त्रिविध प्रवृत्तियों के द्वारा सद्गुरु-आदेशित श्रीमद्-वाणी-वीतराग-वाणी को विश्व-अनुगुंजित करना..... आदि आदि सुकार्य तो एक चमत्कार-श्रृंखलावत् सभी परमगुरु अनुग्रह से चलते आये, साकार बनते रहे हैं । सब कुछ ही आश्चर्यपूर्ण, बड़े ही आश्चर्यपूर्ण दिव्य प्रतिफलन रूप में !!

इन सारे घटनाक्रमों के बीच फिर क्रान्तिकार अनुज कीर्तिकुमार (1959), स्वप्नदृष्टा उदार उपकारक अग्रज पू. चंदुभाई (1970), मेघावी ज्येष्ठा सुपुत्री कु. पारुल (1988), उपकारक जन्मदात्री पू. माँ अचरतबा (1979) इत्यादि सभी स्वजनों के प्रायःअनपेक्षित असमय के देहावसानों ने अंतर्वेदना

एवं अंतर्वैराग्य को लगातार बढ़ाये-बनाये रखने का ही काम किया ("अंतर्ग्लानि संसारभार, पलक पेलेते कोथा एकाकार" – रवीन्द्रनाथ ठाकुर) ।

बापू के १५ दिन के पूना के निश्रागत-आश्रय और श्रीमद्जी के 'मोक्षमाला' के अंतरस्थ-प्रश्रय : एक से निसर्गोपचार-निष्ठा, दूसरी से आत्मदर्शन-अभीप्सा : दोनों ही लौ सतत जलती रहीं अनुकूल-प्रतिकूल सभी परिस्थितियों के बीच । श्रीमद्जी-गांधीजी दोनों से परोक्ष-प्रत्यक्ष प्रथम प्रभावों से प्रभावित यह जीवनयात्रा आज अंत तक भी वैसी ही प्रभावित रही है । योगानुयोग अभी ही इन दोनों युगपुरुषों संबंधित नाटक 'महात्मा के महात्मा' का दर्शन हुआ है और इस अल्पज्ञ के हाथों १५०वी श्रीमद् जन्मशती के 'राजगाथा' लेखन 'राजकथा', 'महासैनिक' नाटक मंचनादि (श्री सहजानंदघन गुरुगाथा के उपरान्त) परमगुरु संपन्न करा रहे हैं ।

३० जनवरी के गांधी-निर्वाण तिथि के दिन बापू की पावन स्मृतियों में डूबकर यह लघु आलेख समापन हो रहा है । सुदूर जीवनकाल से अंतस् में संजोया हुआ उपर्युक्त श्रीमद्जी का आदर्शगान और आदर्शवचन सतत दृष्टि-सन्मुख रहे हैं : "अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ?" एवं "युवावय का सर्वसंग परित्याग परमपद-प्रदान करता है ।" – इस जीवन में बाहर से तो न सही, आगामी जन्म में तो यह अवश्य ही सिद्ध होकर रहेगा और परमकृपालु अमृतसागर परमगुरु केवली श्रीमद्जी के पवित्र श्रीचरणों में पहुँचकर यह जीवन उन्हें, प्रत्यक्ष समर्पित होगा ही । उनकी ही कृपा यह सिद्ध करवाएगी ही । सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करो ! जयजगत् । शिवमस्तु सर्व जगतः ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

(०२-०६-२०१६, १८-०१-२०१७, एवं बापू निर्वाण दिन ३०-०१-२०१७)

* इस लेख के समापन के समय बेंगलोर के Deccan Herald दैनिक (31-1-2017) में समाचार है कि कर्नाटक के मांड्या जिले में 200 दो सौ शय्याओं का विशाल "निसर्गोपचार अस्पताल" खुलेगा । फिर भारतीय संस्कृति आर्षद्रष्टा जैनाचार्य विद्यासागरजी भी अहिंसा तीर्थ सोनागिर में प्राकृतिक चिकित्सालय की आयोजना करवा रहे हैं । जय हो बापू के दरिद्रनारायणों के निसर्गोपचार की ! – प्र. (बापूनिर्वाण दिन 30-1-17) ।